नियमसार, कलश आ गया। भेदविज्ञान का आ गया न? अब ११०वाँ कलश।

इति सति मुनि-नाथस्योच्चकैर्भेद-भावे,
स्वय-मय-मुपयोगाद्राजते मुक्त-मोहः।
शम-जल-निधिपूर-क्षालितांहः कलङ्कः
स खलु समयसारस्यास्य भेदः क एषः।।११०।।

***श्लोकार्थः*—इस प्रकार जब मुनिनाथ को...** मुख्यरूप से मुनि की बात की है। मोक्ष का मार्ग तो वह है न? आहाहा! प्रथम सम्यग्दर्शन, वह भी राग के विकल्प से भिन्न पड़कर चैतन्यस्वरूप पूर्णानन्द प्रभु की अनुभूति हो, अनुभव हो, वह तो प्रथम सम्यग्दर्शन है। वह प्रथम मार्ग है। पश्चात् अन्तर में लीन होना। मुनिनाथ कहा है न? मुनिनाथ हैं, मुनि के नाथ। आहाहा! अन्तर वीतरागी आनन्दकन्द प्रभु में लीन हैं, ऐसे जो **मुनिनाथ को अत्यन्त भेदभाव (-भेदविज्ञान-परिणाम) होता है,...** उन्हें। पर से अत्यन्त भिन्न आनन्दस्वरूप होता है। आहाहा! यह चारित्र।

मुमुक्षु : यह तो सिद्धदशा हो, तब होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ चारित्र सिद्धदशा होने के पहले की बात है। किसने कहा? यह पहले से होता है। आहाहा! ३८ गाथा में नहीं कहा? कलश में, कलश में। '**मज्जन्तु**' भगवन्तस्वरूप प्रभु! तू निर्विकल्प है, अभेद है, शुद्ध है, शुद्धनय से अत्यन्त परमस्वभावभाव है, उसमें '**मज्जन्तु**' वहाँ जा, मग्न हो, प्रभु! आहाहा! ३८ गाथा का कलश है। सर्व जीव उसमें मग्न होओ, भाई!

आनन्दस्वरूप भगवान जो शरीर, वाणी, मन से तो भिन्न है, परन्तु पुण्य-पाप के, दया, दान के, व्रत के विकल्प से भी भिन्न है। आहाहा! यह समयसार की १५६ गाथा में आ गया। समयसार। '**मोत्तूण णिच्छयट्ठं**' विद्वान शास्त्र पढ़कर व्यवहार निकालकर व्यवहार में वर्तते हैं। परन्तु... आहाहा! निश्चय से वस्तु शुद्ध चैतन्यघन वीतरागस्वरूप है। उसे छोड़ देते हैं और व्यवहार में वर्तते हैं। मुक्ति तो निश्चयस्वभाव शुद्ध चैतन्य के आश्रय से होती है। आहाहा! पुण्य-पाप का अधिकार है न? (समयसार) १४४ गाथा (तक) कर्ता-कर्म (अधिकार है), पश्चात् पुण्य-पाप (अधिकार की) १५६ गाथा। आहाहा!

कुन्दकुन्दाचार्य को उस समय ऐसा कहना पड़ा... आहाहा! कि निश्चयवस्तु आनन्द का नाथ, निर्विकल्प वीतरागमूर्ति की दृष्टि छोड़कर, उसकी सन्मुखता छोड़कर विद्वान शास्त्र पढ़कर उसमें से निकाला और उस व्यवहार में वर्तन करते हैं, परन्तु मुक्ति तो निश्चय के आश्रय से, स्वभाव के आश्रय से होगी। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! प्रभु का तो ऐसा पुकार है। एक ऐसी नहीं, ऐसी तीन बात है। '**मज्जन्तु**' वहाँ कहा। यहाँ व्यवहार के वर्तन करनेवाले को बन्धन होता है, (ऐसा कहा)। वस्तु का स्वभाव शुद्ध चैतन्य में

अन्दर में रमे, उसे मुक्ति होती है। ३८वें कलश में ऐसा कहा, सर्व लोक... '**मज्जन्तु**' आनन्द के स्वरूप में आकर सब जीव मग्न होओ। आहाहा!

इसी प्रकार द्रव्यसंग्रह में अपाय के अधिकार में कहा, धर्मध्यान का विचार करनेवाला धर्मी... आहाहा! ऐसा विचार (करता है), इतना सब शुद्ध और परमस्वभाव की भावना करता है कि मैं तो परिपूर्ण परमात्मपद को प्राप्त करूँ, सब जीव प्राप्त हों। कोई जीव दु:खी न होओ। आहाहा! सब आत्मा के स्वरूप में मग्न होओ और सुखी होओ। आहाहा! ऐसा बन्ध अधिकार और सर्वविशुद्ध अधिकार में अन्त में (कहा है कि) यह समयसार समझकर, ज्ञान करके कर्तव्य क्या? करना क्या? कि करना यह कि मैं निर्विकल्प शुद्ध चैतन्य हूँ। शुद्धबुद्ध चैतन्यघन आनन्दकन्द तीन काल में, तीन लोक में, मन, वचन और काया, कृतकारित अनुमोदन से भिन्न पूर्ण मेरी चीज़ है। मैं तो शुद्ध चिदानन्द आनन्द से भरपूर भगवान हूँ। जगतत्रय, कालत्रय—तीन काल और तीन लोक में... आहाहा! मन, वचन और काया से, करना, कराना, अनुमोदन से भिन्न मेरी चीज़ है। आहाहा! ऐसी भावना, हे जीव! तू कर और सर्व जीव निरन्तर ऐसी भावना करो - ऐसा पाठ है। आहाहा! सर्व जीवा... अरे! कौन दु:खी हो?

प्रभु! तू आनन्द है न! आहाहा! दुनिया से उदास हो जा, प्रभु! और स्वभाव में प्रेरक होकर अन्दर में लीन हो और वह भावना ऐसी कर कि मैं भी पूर्णानन्द शुद्ध हूँ और सब जीव पूर्णानन्द शुद्ध हैं, ऐसी निरन्तर भावना कर्तव्य है। आहाहा! गजब है। सब जीव, बाल-गोपाल। सब आत्मा है न, प्रभु! तुम परमेश्वर पद में पड़े हो, भगवत्स्वरूप तेरा है, नाथ! आहाहा! तो सब भगवत्स्वरूप में लीन होओ। ऐसे सर्व जीवों की भावना धर्मी तो ऐसी करता है। कोई दु:खी होओ और भटको, ऐसी भावना नहीं करता। आहाहा! समझ में आया?

(समयसार, गाथा) ३८ में कहा, वह अपाय में कहा और अन्त में बन्ध तथा मोक्ष अधिकार, सर्वविशुद्ध में अन्त में कहा। सर्व जीव, उसे जीव कहते हैं। अतीन्द्रिय आनन्द का सागर, अनन्त ज्ञान का सागर, अनन्त-अनन्त पारिणामिकस्वभावभाव से भरपूर, महाप्रभु में लीन होओ, ऐसा मैं हूँ। मैं अल्पज्ञ नहीं, मैं राग नहीं, मैं निमित्त नहीं। आहाहा! मैं तो पूर्णानन्दस्वरूप हूँ, ऐसी भावना सर्व जीव करो और सर्व जीव निश्चय को प्राप्त होओ।

आहाहा! ऐसा है। यहाँ तो वीतरागभाव की बात है, प्रभु! आहाहा! और यह बात बदलते हैं क्या? वह १२वीं गाथा है न? '**ववहारादेसिदा**' इसका अर्थ ऐसा करते हैं कि निचले प्राणी को तो व्यवहार का ही उपदेश करना। ऐसा अर्थ करते हैं।

मुमुक्षु : निचला किसे कहना?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें विद्यानन्द ने लिखा है परन्तु उसका अर्थ ही टीकाकार ने किया। टीकाकार को कहे, टीकाकार ने दुरूह कर डाला, ऐसा कहा। ऐसा कहकर टीकाकार आचार्य को उड़ा दिया। अमृतचन्द्राचार्य महाभगवन्तस्वरूप, उन्हें उड़ा दिया और निचले जीव को तो व्यवहार का उपदेश करना, ऐसा उसका अर्थ है ही नहीं।

जिसे परमात्मपद प्राप्त हुआ है, उसे तो अब कुछ करना रहा नहीं परन्तु जो कोई अन्दर परमात्मपद में लीन होना चाहते हैं, उस लीनता में अभी कमी के कारण जो रागादि हों, तो उन्हें जाना हुआ प्रयोजनवान है। राग है—ऐसा जानना, वह प्रयोजन है। आहाहा! राग का उपदेश करना, यह प्रभु! उसमें है नहीं। अरे! क्या हो? ऐसे अर्थ करते हैं। उसमें यह अर्थ किया है। टीकाकार ने दुरूह कर दिया, (ऐसा वे लोग कहते हैं)। टीकाकार ने जैसा अर्थ होता हो, वैसा किया है। अमृतचन्द्राचार्य को (तुझे) मिथ्या सिद्ध करना है? जहाँ भगवत्स्वरूप काम किया है न! आहाहा! व्यवहार बीच में आवे, पूर्ण आनन्दस्वरूप का आश्रय लिया होने पर भी पूर्णता प्राप्त न हो तो बीच में अशुद्धता का राग आता है, परन्तु वह राग जाना हुआ प्रयोजनवान है। जाना हुआ; आदरणीय नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। अब इसमें अर्थ दूसरे करे, उसका क्या करना? आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं, **मुनिनाथ...** आहाहा! जिन्हें अत्यन्त भेदभाव होता है। आहाहा! जिन्हें अन्दर विकल्प से तो भिन्न, परन्तु पर्याय से लक्ष्य छूटकर भेदभाव होता है। आहाहा! अखण्डानन्द प्रभु अन्दर पूर्णानन्द परमेश्वर परमात्मा में उसकी पर से भिन्न पड़कर लीनता होती है। सूक्ष्म बात है, प्रभु! आहाहा! वह अत्यन्त भेदविज्ञान होता है। **तब यह (समयसार) स्वयं उपयोग होने से,...** आहाहा! यह भगवान स्वयं तो स्वयं ज्ञानदर्शन उपयोगस्वरूप है। त्रिकाल, हों! पर्याय (नहीं)। यह तो स्वयं उपयोगस्वरूप है। आहाहा! ज्ञानदर्शन का उपयोगरूप, यह इसका स्वरूप है। इसमें कोई राग, दया, दान, व्रत, विकल्प इसके स्वरूप में कोई नहीं है। आहाहा!

यह स्वयं उपयोग होने से,... आहाहा! स्वयं भगवान ज्ञान और दर्शनरूपी उपयोग होने से। आहाहा! **मुक्त मोह...** है। स्वयं उपयोग अन्दर ज्ञान और दर्शन का स्वभाव है। ऐसा उपयोगस्वरूप है, उसमें उपयोग जम गया। आहाहा! आठ वर्ष का बालक भी केवलज्ञान पाता है, प्रभु! उसे कुछ उम्र की आवश्यकता नहीं है। आहाहा! अन्दर प्रभु विराजता है, भाई! तुझे उसकी महिमा की खबर नहीं है। उसकी महिमा का पार नहीं है। जिसकी महिमा सर्वज्ञ की वाणी में भी पूरी कही जा सके, ऐसी नहीं है। वचनातीत, विकल्पातीत ऐसी वह कोई चीज़ है। आहाहा!

यह कहते हैं कि स्वयं उपयोगरूप है न, प्रभु! आहाहा! इन दया, दान के रागरूप तो नहीं, परन्तु अल्पज्ञरूप भी नहीं। आहाहा! स्वयं उपयोग, ज्ञानदर्शन का स्वयं उपयोग त्रिकाल.. आहाहा। ऐसे उपयोग में एकाकार हुआ, वह पर्याय। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, प्रभु! यह तो जन्म-मरण छोड़ने की बात है, बापू! चौरासी के अवतार कर-करके कचूमर निकाल गया है। आहाहा! एक-एक अवतार में अनन्त-अनन्त दुःख सहन किये हैं। कहीं शान्ति नहीं, कहीं सुख का स्वाद नहीं। यह शान्ति और सुख तो आत्मा में है। आहाहा! शान्तिभाई! शान्ति कहाँ है? आहाहा!

प्रभु! तू शान्तरस से भरपूर है न! स्वयं उपयोग कहा न? स्वयं उपयोग है। वह तो ज्ञान-दर्शन का समुद्र है। आहाहा! त्रिकाली जानन और दर्शन ऐसे स्वभाव से भरपूर, ऐसा तेरा स्वरूप त्रिकाल है। आहाहा! ऐसा **स्वयं उपयोग होने से, मुक्त मोह (मोहरहित) होता हुआ,...** वह स्वयं उपयोग में एकाकार होने से मुक्त मोह हो गया। रागादि मोह छूट गया और स्वयं उपयोगस्वरूप जितना है, उतना पर्याय में प्रगट हो गया। माणिकलालभाई! ऐसी बातें हैं, बापू! अरे! जगत को कहाँ.. कहाँ.. वीतरागमार्ग को कहाँ जोड़ दिया? आहाहा!

स्वयं उपयोग होने से,... आहाहा! **मुक्त मोह होता हुआ, शमजलनिधि के पूर से...** आहाहा! जैसे समुद्र के किनारे पानी की बाढ़ आती है, वैसे भगवान दर्शन-ज्ञान और आनन्द का समुद्र भरा है। उसमें एकाग्र होने से उसकी पर्याय में आनन्द की बाढ़ आती है। अतीन्द्रिय आनन्द की बाढ़। बाढ़... बाढ़ तुम्हारी हिन्दी भाषा में (कहते हैं)। आहाहा! जैसे समुद्र के किनारे बाढ़ आती है, वह अन्दर भरा है, उसमें से आती है। कहीं ऊपर से

नहीं आती। समुद्र में पच्चीस इंच बरसात गिरे, परन्तु जब उसे पीछे हटने का हो (भाटा आने का हो)... क्या कहलाता है ? भाटा आने का हो परन्तु पच्चीस इंच तो भी कुछ बाढ़ नहीं लाती। आहाहा! और ११८ डिग्री का ताप हो, परन्तु फिर भी जब बाढ़ का काल हो (तो) वह ताप रोक नहीं सकता। आहाहा! और उसमें जहाँ पूर्णिमा का चन्द्र हो, उससे पानी पूरा अन्दर से उछाला मारता है। ऐसा चन्द्र को और उसे (समुद्र को) दोनों को निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। समझ में आया ? पूर्णिमा का पूर्ण चन्द्र हो अन्दर, वहाँ समुद्र बाढ़-बाढ़ ऐसे अन्दर से उछाला मारता है।

इसी प्रकार भगवान आत्मा.. आहाहा! चन्द्रमा समान शीतलस्वरूप प्रभु में एकाग्र होने से **शमजलनिधि के पूर से...** आया ? **(उपशमसमुद्र के ज्वार से)...** लो, ज्वार आया। आहाहा! प्रभु! शान्ति का मार्ग बहुत अलग है। आहाहा! अरे! सत्य का सुनना मिले नहीं, वह सत्य के, सुख के पन्थ में कब जाए ? दुःख के पन्थ में दौड़ गया, प्रभु! अनन्त काल से दुःख के पन्थ में दौड़ गया है, वह महादुःखी है। पैसेवाला दुःखी बड़ा भिखारी है। शास्त्र में रांका-वारांका गिना है। यह लाओ.. यह लाओ.. यह लाओ.. परन्तु मुझमें आनन्द भरा है, मुझे कुछ नहीं चाहिए। आहाहा! मुझमें उपशमरस और आनन्द का कन्द प्रभु स्वयं आनन्द और ज्ञान के-दर्शन के उपयोगस्वरूप हूँ। वह ज्वार उसमें से पर्याय में आवे, वह मुझे चाहिए। दूसरा कुछ नहीं चाहिए। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा!

शमजलनिधि के पूर से... भाषा देखो! शमजल-समतारूपी, उपशमरूपी जल की निधि अर्थात् समुद्र, उसका पूर। इतने शब्द प्रयोग किये हैं। शमजलनिधि का पूर! यह समता का सागर वीतरागमूर्ति प्रभु, आनन्द का कन्द सागर, वह समता अर्थात् उपशमरस से भरपूर प्रभु, उसमें एकाग्र होने से उसकी पर्याय / अवस्था में **शमजलनिधि के पूर से (उपशमसमुद्र के ज्वार से) पापकलंक को धोकर,...** आहाहा! धोकर अर्थात् यह एक उपदेश है। ऐसे जहाँ गया तो वह पाप होता नहीं, उसे धो डाला, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! पूर्णानन्द के नाथ में जहाँ लीन होता है, वहाँ उसकी पर्याय में पूर्ण शान्तरस, अकषायभाव, उपशमरस की बाढ़ आती है। आहाहा! तब पाप का कलंक है, वह छूट जाता है। आहाहा! यह मार्ग है, प्रभु! कठिन पड़े, जैसा पड़े परन्तु इसके बिना इसका जन्म-मरण नहीं मिटेगा, प्रभु! बाहर से भले मन को मना लेगा। बाहर से कुछ क्रिया करके, यह किया... यह किया... आहाहा! वह दुःख के समुद्र में डूब गया है, भाई!

यह तो **शमजलनिधि के पूर...** जहाँ अन्दर बहते हैं। आहाहा! कहते हैं कि पूर्ण भरपूर तो है ही, परन्तु जहाँ उसमें एकाग्र हुआ, वहाँ शमजलनिधि का पूर, पर्याय में बाढ़ आयी। आहाहा! उसकी वर्तमान दशा में शान्तरस, अकषायरस, वीतरागरस, वह पर्याय में उछल आया, उछाला मारा। आहाहा! उसे यहाँ ज्वार कहते हैं। गुजराती भाषा तो सादी है, बहुत कुछ वैसी (कठिन) नहीं है। समझ में आये ऐसा है या नहीं? यह भाई हिन्दी है। आहाहा! मार्ग ऐसा है, बापू! इसमें वाद-विवाद, झगड़ा, बापू! इसमें कुछ (नहीं है)। आहाहा!

सत्य ही प्रभु ऐसा अन्दर है। शमजलनिधि का पूर। यह तो पर्याय में कहा। शमजलनिधि का पूर तो स्वयं है ही। आहाहा! वह मुक्तमोह हुआ अर्थात् उपशमरस का ज्वार आया, उसने पाप-कलंक को धो डाला। आहाहा! **धोकर, विराजता...** अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय शान्ति में भगवान आत्मा विराजता है, उसका नाम मुक्ति और उसका नाम सिद्धपद है। अरे रे! ऐसी बातें हैं। कठिन पड़े परन्तु मार्ग तो यह है, भाई! आहाहा! कुछ सरल (मार्ग) बताओ न, कोई ऐसा पूछता है। भभूतमलजी! सरल कहो या यह कहो, बापू! दूसरा कोई मार्ग नहीं है। आहाहा!

शमजलनिधि-समतारूपी जल से भरपूर समुद्र भगवान में एकाग्र होने से मुक्त मोह (अर्थात्) मोह से रहित होने से, ज्वार से सहित होने से। मोह से मुक्त होने से और आनन्द की बाढ़ से सहित होने से... आहाहा! वह पाप कलंक को धो डालता है। आहाहा! इस प्रकार से शोभता है।

वह सचमुच,... मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव हैं। **वह सचमुच, इस समयसार का कैसा भेद है!** वह इस समयसार की कैसी दशा है! कहते हैं। आहाहा! भगवान समयसारस्वरूप है, उसका भान होकर स्थिरता हुई, वह इस समयसार का कैसा भेद है! वह यह कैसा प्रकार है! आहाहा! कठिन पड़े। व्यवहार क्रियाकाण्डी के रसवाले को ऐसा लगे, यह रूखा लगे। वहाँ वह रस है न, वह तो अनादि का रस पड़ा है।

अन्दर भगवान पूर्णानन्द का नाथ, वीतराग का पिण्ड है, अकषायस्वभाव का सागर है। निर्विकल्पोऽहं, उसमें लिखा है। देखा? अन्तिम है न, अन्तिम? भावना का लिखा है। बन्ध अधिकार में अन्त में है। बन्ध है न? उसमें लिखा है। बन्ध अधिकार में अन्त में है। मोक्ष अधिकार है, यह तो। बन्ध-बन्ध, हों! देखो! आहाहा!

क्या कहते हैं, देखो! '**तस्य बंधस्य विनाशार्थं**'-बन्ध के नाश के लिए प्रभु! तुझे क्या करना? बन्ध के नाश के लिए, प्रभु! तुझे क्या करना? '**विनाशार्थं विशेषभावनामाह**' यह। विशेष अन्तर की भावना करना। अर्थात् क्या? '**सहजशुद्धज्ञानानंदैकस्वभावोऽहं**' '**सहजशुद्धज्ञानानंदैकस्वभावोऽहं**' आहाहा! है? दो-तीन जगह है। बन्ध अधिकार में है, अन्त में सर्वविशुद्ध अधिकार में है और परमात्मप्रकाश में अन्त में है। प्रभु! ऐसी भावना तो कर एक बार। आहाहा! यह पैसे की, इज्जत की, स्त्री की, पुत्र की, अमुक की सब... आहाहा! पाप का पोथा, सब बन्ध की भावना करे, उसकी अपेक्षा यह तो कर एकबार। कैसा लिया?

यह एक बार कहा था। (संवत्) १९६४ के वर्ष। संवत् १९६४। बहत्तर वर्ष पहले की बात है। उम्र अठारह वर्ष की थी। दुकान का माल लेने जाते थे। बड़ोदरा माल लेने गये, अठारह वर्ष की उम्र। दुकान चलती थी, बड़ी (दुकान) थी। अन्दर माल लेने जाते थे। दिन में माल लिया, रात हुई तो वहाँ एक नाटक था। अनुसूईया का नाटक। भरुच के किनारे नर्मदा है न? वह नर्मदा और अनुसूईया दो बहनें थीं। सती (थी)। यह तो उस दिन की बात है, चौंसठ के वर्ष की बात है, बहत्तर वर्ष पहले की। वह नाटक देखने गये, रात्रि को निवृत्ति हो, उस समय वैराग्य के नाटक बहुत (आते थे)।

उसमें एक महिला थी, अनुसूईया, वह स्वर्ग में जा रही थी तो स्वर्ग में से इनकार आया। वे लोग ऐसा कहते हैं न? 'अपुत्रस्य गति नास्ति' जिसे पुत्र न हो, उसे गति नहीं मिलती क्योंकि वह श्राद्ध करनेवाला नहीं होता इसलिए। वे लोग मानते हैं परन्तु यह सब बात मिथ्या है। परन्तु वह महिला गयी तो स्वर्ग में से इनकार किया। बड़ा नाटक था। अठारह वर्ष की उम्र की बात है। तब कहे—अब मुझे कहाँ जाना? कि स्वर्ग नहीं मिलेगा। पुत्र होगा तो मिलेगा। नीचे हो उसे वरण कर, तो नीचे अन्धा ब्राह्मण था, उससे विवाह किया, उसे पुत्र हुआ। वह पुत्र कहीं से ले आये थे। वे सब तो आदमी थे न, परन्तु गाती थी। आहाहा! उस दिन की बात है। बहत्तर वर्ष पहले की बात है। यह है वह। बेटा! तू निर्विकल्प है, सहजानन्द है, उदासीन है, बुद्ध है, इतने शब्द याद हैं। बाकी तो बहुत गाये थे। यहाँ इसमें तो बहुत हैं।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : इन तीनों में हैं, यह तो कहा न ? तीनों में हैं। उसमें दो में है और एक अन्यत्र, तीन जगह है परन्तु वहाँ उस समय वह बहिन पुत्र को लोरियाँ गाती है। नाटक में वह बात थी। अभी तो सब कुकर्म हो गये हैं। स्त्री ऐसे देखे, हाथ डाले, यह अनीति के बाहर के दिखाव, नीति के आचरण का ठिकाना नहीं होता। उस समय तो नाटक में वैराग्य (की बात थी)।

पुत्र को झुलाते हुए (कहती है), बेटा! तू निर्विकल्प है, ऐसा कहती थी। तू विकल्प रहित अभेद चिदानन्द प्रभु है। शुद्ध है-शुद्ध है। बुद्ध है-ज्ञान का पिण्ड है। उदासीन है, रागादि सबसे उदास प्रभु तेरी दशा है। ऐसे चार भाग याद रहे। उस समय तो पुस्तक ली थी। उस समय ऐसी आदत थी। टिकट तो ली बारह आने की, परन्तु मैंने कहा (कि) तुम क्या बोलते हो, वह पुस्तक लाओ। पुस्तक के पैसे लो, परन्तु तुम बोलते हो, वह समझ में आना चाहिए न। समझे बिना हम क्या सुनेंगे। पहले से ऐसी आदत थी न। किसी भी बात को परीक्षा किये बिना ऐसी की ऐसी मानना नहीं। तुम क्या बोलते हो, उसकी पुस्तक लाओ। बारह आने की पुस्तक ली थी और बारह आने की टिकट ली थी। डेढ़ रुपया। उसमें यह सब लिखा हुआ था और वह बहिन अन्दर बोलती थी। आहाहा! उस समय अन्दर से धुन चढ़ जाती थी, हों! वाह! बेटा! तू निर्विकल्प है न! शुद्ध है न! ज्ञान का पिण्ड है, उदास है। पूरी दुनिया से तेरा आसन अन्दर भिन्न है, प्रभु! आहाहा! भूपतभाई! आहाहा!

यहाँ कहते हैं, यह कहते हैं, देखो! '**सहजशुद्धज्ञानानंदैकस्वभावोऽहं**' आहाहा..! कहाँ से मिले ? भावना यह कर, कहते हैं। '**निर्विकल्पोहं, उदासीनोहं, निरंजननिजशुद्धात्म-सम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपनिश्चय-रत्नत्रयात्मकनिर्विकल्पसमाधिसंजातवीतराग-सहजानंदरूपसुखानुभूतिमात्रलक्षणेन स्वसंवेदनज्ञानेन**' मेरे आनन्द के ज्ञान से मैं ज्ञात होऊँ ऐसा हूँ, बाकी दूसरे प्रकार से ज्ञात होऊँ, ऐसा नहीं। पहले ऐसी भावना कर, कहते हैं। आहाहा! है ? '**स्वसंवेदनज्ञानेन संवेद्यो गम्यः**' मैं तो मेरे ज्ञान से प्रत्यक्ष मुझे जानूँ, ऐसा मैं हूँ। मुझे राग की और निमित्त और देव-गुरु-शास्त्र की आवश्यकता (अपेक्षा) नहीं है। आहाहा! यह पाठ अन्दर है, हों! यह तो संस्कृत है। है ?

'**प्राप्यः, भरितावस्थोऽहं**' '**भरितावस्थो**' पूर्ण भरपूर हूँ। आहाहा! जैसे पानी का

घड़ा पूर्ण भरा हुआ हो, वह मिट्टी का घड़ा है; वैसे यह चैतन्य घड़ा अन्दर आनन्द का कन्द पूर्ण भरपूर है। आहाहा! है ? '**भरितावस्थो**' भरित अवस्था। यहाँ पर्याय नहीं लेना। '**भरितावस्थो**' भरपूर, अवस्थित - मेरा स्वरूप पूर्ण भरपूर है। आहाहा!

'**राग-द्वेष-मोह-क्रोध-मान-माया-लोभ-पंचेन्द्रियविषयव्यापार, मनोवचनकाय-व्यापारभावकम-नोकर्म-ख्याति-पूजा-लाभ-दृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षारूपनिदान-मायामिथ्याशल्यत्रयादि-सर्वविभावपरिणामरहितः शून्योऽहं**' आहाहा! '**शून्योऽहं**' पर से मैं शून्य हूँ। मेरे स्वरूप से परिपूर्ण भरपूर हूँ। पर से मैं शून्य... शून्य हूँ। आहाहा! वह रजनीश शून्य कहता है परन्तु यह वस्तु भरपूर अलग है, इसके बिना तुझे शून्य कहाँ से आया ? अन्दर परिपूर्ण वस्तु भगवान अन्दर परिपूर्ण भरपूर है। वह भरित अवस्था कहने के पश्चात् '**शून्योऽहं**' कहा है। समझ में आया ? पर से शून्य हूँ। आहाहा! है ?

'**जगत्रये**' तीन जगत में, तीन लोक में '**मनोवचनकायैः कृतकारितानुमतैश्च शुद्धनिश्चयेन**' शुद्धनिश्चय से मेरा स्वरूप तो ऐसा है। परमानन्दस्वरूप भगवान वीतरागमूर्ति, निर्विकल्प शून्य और पर से भिन्न मेरा स्वरूप है। ऐसा '**तथा सर्वे जीवाः इति निरंतर**'... '**सर्वे जीवाः इति निरंतर भावना कर्तव्या**' सब जीव ऐसे हैं, प्रभु! ऐसी भावना कर। आहाहा! कैसे श्लोक पड़े हैं, देखो न! अरे! कान में पड़े नहीं। ऐसी चीज़ है, इसे सुनने को मिलती नहीं, वह कब जाए ? कठिन बात है, बापू! यहाँ तो कहते हैं कि '**सर्वे जीवाः**' अभव्य (भी) ? यहाँ अभव्य-फव्य की बात ही नहीं है। सब जीव पूर्णानन्द से भरपूर और पर से शून्य हैं, ऐसी भावना कर्तव्य है। निरन्तर भावना कर्तव्य है। आहाहा! यह तीन जगह है।

यहाँ क्या शब्द आया है ? शमजलनिधि का पूर। आहाहा! जैसे पानी का घोड़ा पूर आता है न ? घोड़ा पूर समझते हो ? हमारी नदी में... हमारा जन्मस्थल उमराला है न ? वह नदी बहुत बड़ी है। बड़ी नदी। उसमें लड़के खेलते हों तो पच्चीस कोस दूर वर्षा हो और यहाँ तो धूप हो। पानी इतना आवे पानी, घोड़ा पूर, इतना ऊँचा दल पानी भरे और नहरों में से इकट्ठा होकर इतना ऊँचा घोड़ा पूर आवे एकदम। लड़के खेलते हों तो बाहर से चिल्लाहट मचावे। सब निकल जाओ... निकल जाओ... पानी का घोड़ा पूर आता है। इतना ऊँचा पूर चला आता है। इसी प्रकार यह आत्मा घोड़ा पूर अन्दर भरपूर है। आहाहा!

उमराला की बड़ी नदी है। 'करियाणा' पच्चीस कोस दूर से बरसात बरसी हो तो वहाँ पानी दोनों किनारे भर जाता है। तीन-तीन माथोड़ा (सिर डूब जाए, इतना) पानी, चार-चार मथोड़ा पानी। वह पूर वहलाता है।

यहाँ यह कहते हैं - शमजलनिधि का पूर। आहाहा! **(उपशमसमुद्र के ज्वार से) पापकलंक को धोकर, विराजता (-शोभता) है;—** अरे रे! **वह सचमुच, इस समयसार का कैसा भेद है!** मुनिराज ऐसा कहते हैं कि आहाहा! ऐसे आत्मा के अनुभव की स्थिरता की रमणता, वह तो कोई समयसार का कैसा प्रकार है! जिसमें पूर आया है, कहते हैं। पर्याय में आनन्द का पूर आया है। अतीन्द्रिय शान्ति का रस झरता है। अरे! यह कोई समयसार का कैसा भेद है। आहाहा! शान्तिभाई! ऐसा वहाँ सुना नहीं। वहाँ उन हीरे-माणिक की अदला-बदली करे। वहाँ कहाँ है? अभी तो बाड़ा में भी नहीं है। मार डाला बेचारे को। क्या करे? यह करो और यह करो में जिन्दगी चली जाती है। आहाहा!

यहाँ परमेश्वर की बात मुनिराज करते हैं। अरे रे! ऐसा भगवान आनन्दसहित भरपूर, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर, उसकी पर्याय में बाढ़ आयी, वह तो कैसा समयसार का प्रकार होगा! अर्थात् कि समयसार का अनुभव, वह समयसार का एक प्रकार है। यह ११० श्लोक (पूरा) हुआ। ८३ गाथा।

गाथा-८३

मोत्तूण वयण-रयणं रागादी-भाव-वारणं किच्चा।
अप्पाणं जो झायदि तस्स दु होदि त्ति पडिकमणं।।८३।।

मुक्त्वा वचन-रचनां रागादि-भाव-वारणं कृत्वा।
आत्मानं यो ध्यायति तस्य तु भवतीति प्रतिक्रमणम्।।८३।।

दैनं दैनं मुमुक्षुजनसन्स्तूयमानवाङ्मयप्रतिक्रमणनामधेयसमस्तपापक्षयहेतुभूतसूत्रसमुदय-निरासोऽयम्। यो हि परमतपश्चरणकारणसहजवैराग्यसुधासिन्धुनाथस्य राकानिशीथिनीनाथः अप्रशस्तवचनरचनापरिमुक्तोऽपि प्रतिक्रमणसूत्रविषमवचनरचनां मुक्त्वा सन्सारलतामूलकन्दानां निखिलमोहरागद्वेषभावानां निवारणं कृत्वाऽखण्डानन्दमयं निजकारणपरमात्मानं ध्यायति, तस्य खलु परमतत्त्वश्रद्धानावबोधानुष्ठानाभिमुखस्य सकलवाग्विषयव्यापारविरहितनिश्चय-प्रतिक्रमणं भवतीति।

तथा चोक्तं श्रीमदमृतचन्द्रसूरिभिः ह्न

(मालिनी)

अलमलमतिजल्पैर्दुर्विकल्पैरनल्पै-
रयमिह परमार्थश्चेत्यतां नित्यमेकः।
स्वरस-विसर-पूर्ण-ज्ञान-विस्फूर्तिमात्रा-
न्न खलु समयसारादुत्तरं किञ्चिदस्ति।।

तथाहि ह्न

रे वचन रचना छोड़ रागद्वेष का परित्याग कर।
ध्याता निजात्मा जीव जो होता उसी को प्रतिक्रमण॥८३॥

अन्वयार्थः—[वचनरचनां] वचनरचना को [मुक्त्वा] छोड़कर, [रागादि-भाववारणं] रागादिभावों का निवारण [कृत्वा] करके, [यः] जो [आत्मानं] आत्मा

को [ध्यायति] ध्याता है, [तस्य तु] उसे [प्रतिक्रमणं] प्रतिक्रमण [भवति इति] होता है।

टीका:—प्रतिदिन मुमुक्षुजनों द्वारा उच्चारण किया जानेवाला जो वचनमय प्रतिक्रमण नामक समस्त पापक्षय के हेतुभूत सूत्रसमुदाय उसका यह निरास है (अर्थात् उसका इसमें निराकरण-खण्डन किया है)।

परम तपश्चरण के कारणभूत सहज वैराग्यसुधासागर के लिए पूर्णिमा का चन्द्र ऐसा जो जीव (-परम तप का कारण ऐसा जो सहज वैराग्यरूपी अमृत का सागर उसे उछालने के लिए अर्थात् उसमें ज्वार लाने के लिए जो पूर्ण चन्द्र समान है ऐसा जो जीव) अप्रशस्त वचनरचना से परिमुक्त (-सर्व ओर से मुक्त) होने पर भी प्रतिक्रमणसूत्र की विषम (विविध) वचनरचना को (भी) छोड़कर संसारलता के मूल-कन्दभूत समस्त मोह-राग-द्वेष-भावों का निवारण करके अखण्ड-आनन्दमय निज कारणपरमात्मा को ध्याता है, उस जीव को—कि जो वास्तव में परमतत्त्व के श्रद्धान, ज्ञान और अनुष्ठान के सन्मुख है उसे—वचनसम्बन्धी सर्व व्यापार रहित निश्चयप्रतिक्रमण होता है।

इसी प्रकार (आचार्यदेव) श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि ने (श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में २४४ वें श्लोक द्वारा) कहा है कि:—

'[श्लोकार्थः] अधिक कहने से तथा अधिक दुर्विकल्पों से बस होओ, बस होओ; यहाँ इतना ही कहना है कि इस परम अर्थ का एक का ही निरन्तर अनुभवन करो; क्योंकि निज रस के विस्तार से पूर्ण जो ज्ञान उसके स्फुरायमान होनेमात्र जो समयसार (-परमात्मा) उससे ऊँचा वास्तव में अन्य कुछ भी नहीं है (-समयसार के अतिरिक्त अन्य कुछ भी सारभूत नहीं है)।'

गाथा-८३ पर प्रवचन

मोत्तूण वयण-रयणं रागादी-भाव-वारणं किच्चा।
अप्पाणं जो झायदि तस्स दु होदि त्ति पडिकमणं।।८३।।

सच्चा प्रतिक्रमण किसे कहना, उसकी बात परमात्मा फरमाते हैं। आहाहा! ऐसे तो

सब मिच्छामि दुक्कडम्... मिच्छामि दुक्कडम् कर-करके अनन्त बार मर गया। आहाहा! परन्तु पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, उसमें अन्दर स्थिर होकर राग से हट जाता है और स्वरूप में स्थिर होता है, तब उसे सच्चा प्रतिक्रमण कहा जाता है। आहाहा! हम भी पहले दुकान पर प्रतिक्रमण करते थे, हों! पहाड़े बोलते थे। एक भी अर्थ की खबर नहीं होती।

रे वचन रचना छोड़ रागद्वेष का परित्याग कर।
ध्याता निजात्मा जीव जो होता उसी को प्रतिक्रमण॥८३॥

टीका:—प्रतिदिन मुमुक्षुजनों द्वारा... अब क्या कहते हैं? सवेरे-शाम में प्रतिदिन धर्मी जीव प्रतिक्रमण करता है। वह **प्रतिदिन मुमुक्षुजनों द्वारा...** मोक्षार्थी जीवों द्वारा **उच्चारण किया जानेवाला जो वचनमय प्रतिक्रमण...** वचनमय प्रतिक्रमण। मिच्छामि दुक्कडं.. इच्छामि पडिक्कमणा। वह **नामक समस्त पापक्षय के हेतुभूत...** वह तो पाप के परिणाम के अभावस्वरूप पुण्य। वह पुण्य है। व्यवहार प्रतिक्रमण, वह सब पुण्य है। पाप का जरा क्षय हो और पुण्य के परिणाम हों। धर्म नहीं। आहाहा!

प्रतिदिन मुमुक्षु जीव को। आहाहा! सवेरे और शाम **उच्चारण किया जानेवाला जो वचनमय प्रतिक्रमण नामक समस्त पापक्षय के हेतुभूत सूत्रसमुदाय...** सिद्धान्त के वचन **उसका यह निरास है...** उसके निषेध के लिए यह प्रतिक्रमण की व्याख्या है। आहाहा! यह वचनमय प्रतिक्रमण है, वह विकल्पवाला है, वह तो बन्ध का कारण है। उसके निरास के लिए, उसके अभाव करने के लिए यह बात है। आहाहा! यहाँ तो उसके व्यवहार प्रतिक्रमण के अर्थ की खबर नहीं हो। णमोत्थुणं आता है न? णमोत्थुणं किया था? भभूतमलजी! पहले किया था? ठीक। उसमें आता है। लोगस्स में आता है। लोगस्स है न? 'लोगस्स उज्जोअगरे धम्मतित्थयरे जिणे...' उसमें 'विहूयरयमला' आता है। 'विहूयरयमला' लोगस्स में (आता है)। अर्थ की खबर नहीं होती। फिर एक महिला बोलने लगी, वहाँ लींबड़ी में विशाश्रीमाली और दशाश्रीमाली को विवाद (चलता था)। इसलिए दशाश्रीमाली महिला यह बोली - विहूयरयमला अर्थात् वीहा रोई मलया। अर्थ की खबर नहीं होती। लोगस्स में आता है। अन्तिम नहीं 'अेवंमअे अभिथुआ, विहुयरयमला पहीणजरमणा...' 'लोगस्स उज्जोअगरे, धम्मतित्थयरे जिणे।' यह तो दस वर्ष की उम्र से किया हुआ है। उसमें 'विहूयरयमला' आता है। एक महिला अर्थ करने लगी कि वीहा रोई

मल्या। वे कहे अपना विवाद इसमें कहाँ से आया? उसमें तो ऐसा अर्थ नहीं है। (सच्चा अर्थ) क्या है?

विहूय - हे परमात्मा! विशेष हुय अर्थात् टाले हैं (अभाव किया है), रयमला— रय अर्थात् कर्म की रज और मला अर्थात् पुण्य-पाप का मेल। आपने मिटाया है, तब आप परमात्मा हुए हो। ऐई! है? अर्थ की खबर थी? आहाहा! णमोत्थुणं में ऐसा आता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : 'सरणगईपईट्ठा'। 'दीवोताणं सरणगईपईट्ठा' नमोत्थुणं में आता है। 'नमोत्थुणं, अणिहंताणं, भगवंताणं, आईगराणं, तित्थयराणं' -आता है न? उसमें 'दीवोताणं सरणगईपईट्ठा' (आता है)। अब महिला अर्थ करने लगी। सामने विरोध था। 'दीवाटांणे संघवी पीठ्या' उसमें से ऐसा निकाला। 'दीवोताणं सरणगईपईट्ठा' का अर्थ आवे नहीं। 'दीवाटांणे संघवी पीठ्या'। कहा, यह नमोत्थुणं में कहाँ से आया ऐसा? देखो तो सही। 'दीवोताणं सरणगईपईट्ठा' जैसे समुद्र में द्वीप होता है, वैसे इस संसार तरने का उपाय भगवान आत्मा में अन्दर है, वह शरण है। अन्दर शरणभूत भगवान आत्मा है। अर्थ की खबर नहीं होती और विपरीतता सेवन करते हैं।

यहाँ तो कहते हैं कि उस प्रतिक्रमण के वचन का विकल्प और उसका जो राग, उसे निरास करने की व्याख्या है। उसका खण्डन करते हैं कि व्यवहार नहीं, व्यवहार संसार बन्ध का कारण है। आता है, होता है। आहाहा! **(अर्थात् उसका इसमें निराकरण-खण्डन किया है)।**

परम तपश्चरण के कारणभूत... आहाहा! देखो! लेंगे। **परम तपश्चरण के...** आनन्द का नाथ अन्दर स्वरूप सम्यग्दर्शनसहित, स्वरूप की चारित्र की रमणतासहित, स्वर्ण जैसे गेरु से शोभित होता है, वैसे अन्तर आत्मा की शोभा वीतरागभाव से शोभता है, उसे यहाँ तपस्या कहते हैं। अरे.. अरे! तपस्या की व्याख्या अलग है। यह कहते हैं, देखो!

परम तपश्चरण के कारणभूत सहज वैराग्यसुधासागर के लिए पूर्णिमा का चन्द्र ऐसा जो जीव... आहाहा! जैसे पूनम का चन्द्र पूर्ण उदित हो, (तब) समुद्र में ज्वार आता है। इसी प्रकार मुनिराज... आहाहा! अन्दर वीतराग की भावना का रसीले रस में चढ़ गया (तो पर्याय में) ज्वार आया। आहाहा! है?

पूर्णिमा का चन्द्र ऐसा जो जीव... उस जीव को ही चन्द्रमा कहा। **(-परम तप का कारण ऐसा जो सहज वैराग्यरूपी अमृत का सागर...)** आहाहा! भगवान तो अमृत का सागर है, सुख का सागर है। अमृत अर्थात् सुख। आहाहा! उस अमृत का सागर ऐसा भगवान। अमृत के सागर को उछालने के लिए, अन्दर अमृत का सागर भगवान भरा है। चन्द्र में जैसे पूर्णिमा का उछले, वैसे जो मुनि अपने स्वरूप में रमते हैं, उनकी पर्याय में आनन्द उछलता है। आहाहा! यह निश्चय प्रतिक्रमण। अरे रे! ऐसी बातें हैं। सब बातों में अन्तर है। इसलिए कितने ही कहते हैं न कि सोनगढ़वालों ने नया निकाला है। भूपतभाई! नया नहीं निकाला, भगवान! अनादि का भगवान कहते हैं, वह यह है। बापू! तूने सुना नहीं, इसलिए तुझे नया लगता है। यह मार्ग तो अनादि का है। अन्दर है या नहीं? आहाहा! कहते हैं कि वे मुनि कैसे हैं? कि जैसे पूर्णिमा का चन्द्र होता है और जैसे ज्वार आता है, वैसे वे मुनि अपने आनन्दस्वरूप में एकाग्र होकर... आहाहा! पर्याय में, अवस्था में अमृत का उछाला आता है, अमृत की बाढ़ आती है, उसका नाम निश्चय प्रतिक्रमण कहते हैं। आहाहा! ऐसी बातें हैं। इसलिए कहते हैं सोनगढ़वालों ने व्यवहार को उत्थापित कर डाला है, अमुक ऐसा किया है। सब सुना है, सब सुना है, बापू! सुन न अब। यहाँ क्या कहते हैं? व्यवहार को तो निरास करते हैं। व्यवहार आवे, परन्तु वह खण्डन करनेयोग्य है, निषेध करने योग्य है। आहाहा! व्यवहार करते-करते निश्चय होगा, ऐसा स्वरूप नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : व्यवहार करते-करते बन्ध होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार तो बन्ध परन्तु व्यवहार स्वयं बन्धस्वरूप है। बन्ध स्वरूप से बन्ध ही होगा और आत्मा मुक्तस्वरूप है, उसके आश्रय से मुक्तदशा होगी। आहाहा! पुण्य-पाप अधिकार में आता है। विकार है, वह बन्धस्वरूप ही है। उसमें बन्ध ही होता है और भगवान आत्मा मुक्तस्वरूप है तो मुक्तस्वभाव के आश्रय से मुक्तपना ही आता है। समयसार में पुण्य-पाप के अधिकार में है। आहाहा!

सहज वैराग्यरूपी... क्या कहते हैं? **(परम तप का कारण ऐसा जो सहज वैराग्यरूपी...)** पर से एकदम उदास। आहाहा! दुनिया के विकल्प से भी जो उदास है। आहाहा! परचीज से तो उदास है परन्तु शुभविकल्प जो प्रतिक्रमण का व्यवहार आता है, उससे भी परम उदास वैरागी है। आहाहा! कठिन बात, भाई! परिचय नहीं, अभ्यास नहीं; इसलिए कठिन लगता है।

वस्तु तो स्वयं भरी है। भगवान पड़ी है। भगवत्स्वरूप है। सब भगवान हैं, कोई अपूर्ण और कोई विकारी आत्मा है ही नहीं। आहाहा! सब भगवानस्वरूप अनन्त हैं। आहाहा! ऐसे भगवानस्वरूप को पहचान कर अन्दर में स्थिर हुआ, वह चन्द्रमा जैसे पूनम से उगे और पानी का ज्वार आवे, वैसे पर्याय में **(सहज वैराग्यरूपी अमृत का सागर उसे उछालने के लिए अर्थात् उसमें ज्वार लाने के लिए जो पूर्ण चन्द्र समान है...)** मुनि। आहाहा! पंचम काल के सन्त कहते हैं। यह टीकाकार तो नौ सौ वर्ष पहले हुए। आहाहा! ऐसी मुनि की दशा है। मुनि की दशा, बापू! मुनि कोई वस्त्र छोड़े और नग्न हो गया, इसलिए मुनि है ? आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, अन्दर में इतना उदास है कि जिसे विकल्प भी नहीं रुचता, नहीं सुहाता। आहाहा! शरीर, वाणी, और परपदार्थ की तो क्या बात करना परन्तु जिसे व्यवहार प्रतिक्रमण का विकल्प जो राग है, वह जिसे नहीं पोसाता, नहीं रुचता, नहीं सुहाता। आहाहा!

(पूर्ण चन्द्र समान है, ऐसा जो जीव)... आहाहा! **अप्रशस्त वचनरचना से परिमुक्त...** कहते हैं कि अशुभभाव से तो परिमुक्त है। ऐसा **होने पर भी प्रतिक्रमणसूत्र की विषम (विविध) वचनरचना को (भी) छोड़कर...** अशुभभाव तो छोड़ा है, परन्तु प्रतिक्रमण का, व्यवहार का जो प्रतिक्रमण का विकल्प है, उसे भी छोड़कर। अरे.. ऐसी बातें हैं। शास्त्र में देखे नहीं, पढ़े नहीं, विचार करे नहीं और सोनगढ़ के नाम से तो ऐई! सोनगढ़ तो निश्चयाभास है। व्यवहार से तो बात करते नहीं। भगवान!

मुमुक्षु : बात ही सब व्यवहार की है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह विकल्प उठता है, वह भी व्यवहार है, वाणी वह सब व्यवहार है परन्तु वह आदरनेयोग्य नहीं है। आहाहा!

कहते हैं कि सत्य प्रतिक्रमण करनेवाला अप्रशस्तराग से तो उदास है, छूट गया है। है ? परन्तु **प्रतिक्रमणसूत्र की विषम (विविध) वचनरचना को (भी) छोड़कर..** आहाहा! इच्छामि पडिकमणूं... इन सब शब्दों को छोड़कर और उनकी ओर के विकल्प को छोड़कर, ऐसा कहते हैं। अब ऐसी बातें हैं, भाई! आहाहा! मार्ग तो ऐसा है, बापू! आहाहा! 'एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ' परमार्थ का पन्थ तो यह एक ही होता है। दूसरा व्यवहार भी एक (मार्ग) है, ऐसा नहीं है। आहाहा! उस विकल्प को भी छोड़कर... आहाहा! है ?

संसारलता के मूल-कन्दभूत समस्त मोह-राग-द्वेष-भावों का निवारण करके... संसाररूपी बेल / लता। संसाररूपी बेल फलती है। उस संसारलता के मूल-कन्दभूत, उसका मूल... **समस्त मोह-राग-द्वेष...** ये समस्त मोह-राग-द्वेष, उस संसारलता का मूल है। चाहे तो दया, दान और व्रत का व्यवहार प्रतिक्रमण का विकल्प हो, परन्तु संसारलता का मूल है। आहाहा! सुनना कठिन पड़ता है। अन्दर है या नहीं? वे बहियाँ देखी, परन्तु ये बहियाँ देखी नहीं होगी, अन्दर पढ़ा भी नहीं होगा। आहाहा!

संसारलता के मूल-कन्दभूत... मूल कन्द-जड़। संसार की बेल का मूल। कौन? मोह-राग-द्वेष-भाव। आहाहा! मिथ्यात्व और पुण्य-पाप का भाव, वह संसारलता बेल का मूल है। आहाहा! उसमें संसार बेल फलती है। आहाहा! कठिन पड़े, बापू! जरा विचार करना चाहिए, भाई! उसका **निवारण करके अखण्ड-आनन्दमय निज कारणपरमात्मा को ध्याता है,...** आहाहा! देखो! है? कहते हैं कि परसंयोग से तो उदास है, अप्रशस्त राग अशुभराग तो छूट गया है, परन्तु शुभराग को भी छोड़कर... आहाहा! **अखण्ड-आनन्दमय..** प्रभु! अन्दर अखण्ड आनन्दमय प्रभु है। आहाहा! जिसमें पर्याय का भेद भी नहीं, ऐसा अखण्ड आनन्दमय प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द का रसवाला, ऐसा आत्मा।

ऐसा **निज कारणपरमात्मा...** अपना कारणपरमात्मा, निज कारणपरमात्मा । आहाहा! देखो! **अखण्ड-आनन्दमय निज कारणपरमात्मा को...** यहाँ आत्मा को निज कारणपरमात्मा कहा है। आहाहा! दो बीड़ी ठीक से पीवे, तब तो भाईसाहब को पाखाने में दस्त उतरे। ऐसे अपलक्षण। उसे ऐसा कहना कि अन्दर निज कारणपरमात्मा (तू स्वयं है) किस माप से माप करे? आहा!

यहाँ तो परमात्मा पंचम काल के सन्त भी जगत को प्रसिद्ध करके पुकार करते हैं। आहाहा! पंचम काल के हीन पुण्य और साधारण, ऐसा नहीं मानना। वह तो बाहर की दशा है। प्रभु! तू तो परिपूर्ण भगवान है न! आहाहा! कैसा? **अखण्ड-आनन्दमय...** आनन्दवाला भी नहीं। **अखण्ड-आनन्दमय...** जैसे शक्कर मिठासमय है, वैसे अखण्ड अतीन्द्रिय आनन्दमय प्रभु आत्मा है। आहाहा! कौन? अखण्ड आनन्दमय कौन? निज कारणपरमात्मा। त्रिकाली द्रव्य कारणपरमात्मा को मुनि ध्याते हैं, उसे मुनि ध्यान में ध्येय में लेकर उसका ध्यान करते हैं। आहाहा! उस जीव को क्या है, वह विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)